महावीर का श्रावक वर्ग तब और अब एक आत्मविश्लेषण

प्रस्तुत आलेख में हमारा प्रतिपाद्य भगवान महावीर की श्रावक संस्था की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समीक्षा करना है।

जैन धर्म निवृत्तिपरक धर्म है। संन्यास की अवधारणा निवृत्तिपरक धर्मों का हार्द है। इस आधार पर सामान्यतया यह माना जाता रहा है कि निवृत्तिमार्गी श्रमण परम्परा में गृहस्थ का वह स्थान नहीं रहा, जो कि प्रवृत्तिमार्गी हिन्दू परम्परा में उसे प्राप्त था। प्रवृत्तिमार्गी परम्परा में गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों का आधार माना गया था। यद्यपि श्रमण परम्परा में संन्यास धर्म की प्रमुखता रही, किन्तु यह समझ लेना भ्रांतिपूर्ण होगा कि उसमें गृहस्थ धर्म उपेक्षित रहा। वे श्रमण परम्पराएँ, जो संघीय व्यवस्था को लेकर विकसित हुईं, उनमें गृहस्थ या उपासक वर्ग को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। भारतीय श्रमण परम्परा में जैन, बौद्ध, आदि ऐसी परम्पराएँ थीं जिन्होंने संघीय साधना को महत्त्व दिया। भगवान महावीर ने अपनी तीर्थ स्थापना में श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविकारूप चतुर्विध तीर्थ की स्थापना की। भगवान महावीर की परम्परा में ये चारों ही धर्म संघ के प्रमुख स्तम्भ माने जाते हैं। उन्होंने अपनी संघ व्यवस्था में गृहस्थ उपासक एवं उपासिकाओं को स्थान देकर, उनके महत्त्व को स्वीकार किया है। महावीर की संघ व्यवस्था साधना के क्षेत्र में स्त्री वर्ग और गृहस्थ वर्ग दोनों के महत्त्व को स्वीकार करती है। उन्होंने सूत्रकृतांग (२/२/३९) में स्पष्ट रूप से यह कहा था कि अणुव्रत के रूप में अहिंसा का पालन करने वाला गृहस्थ धर्म भी आर्य है और समस्त दुःखों का अन्त करने वाला पूर्णतया सम्यक् और साधु है।

उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है, कि चाहे सामान्य रूप से गृहस्थों की अपेक्षा श्रमण को श्रेष्ठ माना जाए, किन्तु कुछ गृहस्थ ऐसे भी होते हैं जो श्रमणों की अपेक्षा संयम के परिपालन में श्रेष्ठ होते हैं। महावीर के शासन में महत्त्व वेश का नहीं है, आध्यात्मिक निष्ठा का है। आध्यात्मिक विकास के क्षेत्र में श्रेष्ठता और निम्नता का आधार आध्यात्मिक जागरुकता, अप्रमत्तता, अनासक्ति और निराकुलता है। जिसका चित्त निराकुल और शान्त है, जो अपने कर्तव्य पथ पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूरी ईमानदारी के साथ चल रहा है, जिसकी अन्तरात्मा निर्मल और विशुद्ध है, वह महावीर के मुक्ति पथ पर चलने का अधिकारी है।

भगवान महावीर ने अपने धर्म मार्ग में साधना एवं संघ व्यवस्था की दृष्टि से गृहस्थ को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था। यदि मध्यवर्ती युगों को देखें तो भी यह बात अधिक सत्य प्रतीत होती है, क्योंकि मध्ययुग में भी जैन धर्म और संस्कृति को सुरक्षित रखने में गृहस्थ वर्ग का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने न केवल भव्य जिनालय बनवाये और ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करवाकर साहित्य की सुरक्षा की, अपितु अपने त्याग से संघ और समाज की सेवा भी की। यदि हम वर्तमान काल में जैन धर्म में गृहस्थ वर्ग के स्थान और महत्त्व के सम्बन्ध में विचार करें, तो आज भी ऐसा लगता है कि जैन धर्म के संरक्षण और विकास की अपेक्षा गृहस्थ वर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सम्पूर्ण भारत में एक प्रतिशत जनसंख्या वाला यह समाज सेवा और प्राणी-सेवा के क्षेत्र में आज भी अग्रणी स्थान रखता है। देश में जनता के द्वारा संचालित जनकल्याणकारी संस्थाओं अर्थात् विद्यालय, महाविद्यालय, चिकित्सालय, गौशालाएं, पांजरापोल, अल्पमूल्य की भोजनशालाओं आदि की परिगणना करें तो यह स्पष्ट है कि देश में लगभग ३० प्रतिशत लोकसेवी संस्थाएँ जैन समाज के द्वारा संचालित हैं। एक प्रतिशत की जनसंख्या वाला समाज यदि ३० प्रतिशत की भागीदारी देता है तो उसके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। एक दृष्टि से देखें तो महावीर के युग से लेकर आज तक जैन धर्म, जैन समाज और जैन संस्कृति के संरक्षण का महत्त्वपूर्ण दायित्व श्रावक वर्ग ने ही निभाया है, चाहे उसे प्रेरणा और दिशाबोध श्रमणों से प्राप्त हुआ हो। इस प्रकार सामान्य दृष्टि से देखने पर महावीर के युग और आज के युग में कोई विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता।

किन्तु जहाँ चारित्रिक निष्ठा के साथ सदाचारपूर्वक नैतिक आचार का प्रश्न है, आज स्थिति कुछ बदली हुई प्रतीत होती है। महावीर के युग में गृहस्थ साधकों के धनबल और सत्ताबल की अपेक्षा चारित्रबल को अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता था। स्वयं भगवान महावीर ने मगध सम्राट श्रेणिक को पुनियां श्रावक के पास भेजकर धनबल और सत्ताबल पर चारित्रबल की महत्ता का आदर्श उपस्थित किया था। साधना के क्षेत्र में धनबल और सत्ताबल की अपेक्षा चारित्र बल प्रधान है। अपने प्रधान शिष्य और १४,००० निर्ग्रंथ भिक्षुओं के अग्रणी आर्य इन्द्रभूति गौतम को समाधिमरण की साधना में रत आनन्द श्रावक के पास क्षमा याचना के लिए भेजकर महावीर ने जहां एक ओर गृहस्थ के चारित्र बल की महत्ता को प्रतिपादित किया था, वहीं श्रावक के जीवन की गरिमा को भी स्थापित किया था। वर्तमान संघीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवस्था में गृहस्थ वर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान तो स्वीकार किया जाता है, किन्तु इन बदली हुई परिस्थितियों में चारित्र बल की अपेक्षा गृहस्थ का धन बल और सत्ताबल ही प्रमुख बन गया है। समाज में न तो आज चारित्रवान श्रावक साधकों और न ही विद्वत् वर्ग का ही कोई महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज जैन धर्म की सभी शाखाओं में समाज पर, समाज पर ही क्या कहें, मुनिवर्ग पर भी धनबल और सत्ताबल का प्राधान्य है। महावीर के युग में और मध्यकाल में भी उन्हीं श्रावकों का समाज पर वर्चस्व था, जो संघीय हित के लिए तन-मन-धन से समर्पित होते थे। फिर वे चाहे सम्पत्तिशाली हों या आर्थिक अपेक्षा से निर्धन क्यों न हों। आज हम यह देखते हैं कि समाज के शीर्ष स्थानों पर वे ही लोग बैठे हुए हैं, जिनकी चारित्रिक निष्ठा पर अनेक प्रश्नचिन्ह लगे हुए हैं।

सामान्यतया आज यह समझा जाता है कि मुनिजीवन की साधना गृहस्थ जीवन की साधना की अपेक्षा अधिक दु:साध्य है किन्तु मेरा ऐसा मानना है कि साधना के क्षेत्र में श्रेष्ठता का आधार मुनिवेश या गृहस्थ वेश नहीं है। जैन धर्म की सम्पूर्ण साधना का हार्द ममत्व का त्याग कर समता या वीतरागता की साधना है। वह इन्द्रियों की विषय-वासना की माँग पर संयम के विजय की साधना है। संन्यास मार्ग की साधना कठोर होते हुए सुसाध्य है, जबकि गृहस्थ धर्म की साधना सुसाध्य प्रतीत होते हुए भी दु:साध्य है। चित्त विचलन के जो अवसर गृहस्थ जीवन में रहे हुए हैं, उनकी अपेक्षा मुनि जीवन में वे अत्यंत अल्प हैं। गिरिकंदराओं में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन उतना कठिन नहीं है जितना नारियों के मध्य रहकर उसका पालन करना है। क्या विजय सेठ और सेठानी के अथवा कोशा वैश्या के घर में चातुर्मास में स्थित स्थूलिभद्र के कठोर ब्रह्मचर्य की साधना की तुलना किसी अन्य मुनि के ब्रह्मचर्य की साधना से की जा सकती है? गृहस्थ धर्म से आध्यात्मिक विकास की ओर जानेवाला मार्ग फिसलन भरा है, उसमें कदम-कदम पर सजगता की आवश्यकता है, साधक यदि एक क्षण के लिए भी वासनाओं के आवेग से नहीं संभला तो उसका पतन हो सकता है। वासनाओं के बवंडर के मध्य रहते हुए उनसे अप्रभावित रहना सरल नहीं है। गृहस्थ जीवन में आध्यात्मिक साधना काजल की कोठरी में रहकर भी चारित्र रूपी चादर को बेदाग रखना है। मेरे यह सब कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि मैं मुनि जीवन की महत्ता और गरिमा को नकार रहा हूँ। एक मुनि जिन आध्यात्मिक उचाईयों को छूता है, यदि कोई गृहस्थ जीवन में रहकर भी उन उचाईयों को छू ले तो वह अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। वैसे तो हर युग के अन्दर इस प्रकार के गृहस्थ साधक रहे हैं, जिन्होंने अपनी चारित्रिक साधना के उच्चतम आदर्श उपस्थित किए हैं। वर्तमान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युग में भी ऐसे कुछ साधक हुए हैं जिनका चारित्र बल किसी अपेक्षा से सामान्य मुनियों से भी श्रेष्ठ रहा है। फिर भी यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें तो ऐसा लगता है कि महावीर के युग की अपेक्षा आज इस प्रकार के आत्मनिष्ठ गृहस्थ साधकों की संख्या में कमी आयी है। यदि हम महावीर के युग की बात करते हैं तो वह बहुत पुरानी हो गई। यदि निकटभूत अर्थात् उन्नीसवीं शती की बात को ही लें तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काल के जो समाज-आधारित आपराधिक आंकड़े हमें उपलब्ध होते हैं, यदि उनका विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट लगता है कि उस युग में जैनों में आपराधिक प्रवृत्ति का प्रतिशत लगभग शून्य था। यदि हम आज की स्थिति देखें तो छोटे-मोटे अपराधों की बात तो एक ओर रख दें, देश के महाअपराधों की सूची पर दृष्टि डालें तो चाहे घी में चर्बी मिलाने का काण्ड हो, चाहे अलकबीर के कत्लखाने में तथाकथित जैन भागीदारी का प्रश्न हो अथवा बड़े-बड़े हवाला जैसे आर्थिक घोटाले हों, हमारी साख कहीं न कहीं गिरी है। एक शताब्दी पूर्व तक सामान्य जनधारणा यह थी कि आपराधिक प्रवृत्तियों का जैन समाज से कोई नाता रिश्ता नहीं है, लेकिन आज की स्थिति यह है कि आपराधिक प्रवृत्तियों के संरगनाओं में जैन समाज के लोगों के नाम आने लगे हैं। इससे ऐसा लगता है कि वर्तमान युग में हमारी ईमानदारी और प्रामाणिकता पर अनेक प्रश्न चिन्ह लग चुके हैं? तब की अपेक्षा अब अणुव्रतों के पालन की आवश्यकता अधिक है।

एक युग था जब श्रावक से तात्पर्य था - व्रती श्रावक । तीर्थंकरों के युग में जो हमें श्रावकों की संख्या उपलब्ध होती है वह संख्या श्रद्धाशील श्रावकों की संख्या नहीं, बल्कि व्रती श्रावकों की है। किन्तु आज स्थिति बिल्कुल बदलती हुई नजर आती है, यदि आज हम श्रावक का तात्पर्य ईमानदारी एवं निष्ठापूर्वक श्रावक व्रतों के पालन करने वालों से लें, तो हम यह पाएँगे कि उनकी संख्या हमारे श्रमण और श्रमणी वर्ग की अपेक्षा कम ही होगी। यद्यपि यहाँ कोई कह सकता है कि व्रत ग्रहण करने वालों के आँकड़े तो कहीं अधिक हैं, किन्तु मेरा तात्पर्य मात्र व्रत ग्रहण करने से नहीं, किन्तु उसका परिपालन कितनी ईमानदारी और निष्ठा से हो रहा है, इस मुख्य वस्तु से है। महावीर ने गृहस्थ वर्ग को श्रमणसंघ के प्रहरी के रूप में उद्घोषित किया था। उसे श्रमण के माता-पिता के रूप में स्थापित किया गया था। यदि हम सुदूर अतीत में न जाकर केवल अपने निकट अतीत को ही देखें तो यह स्पष्ट है कि आज गृहस्थ न केवल अपने कर्तव्यों और दायित्वों को भूल बैठा है बल्कि वह अपनी अस्मिता को भी खो बैठा है। आज यह समझा जाने लगा है कि धर्म और संस्कृति का संरक्षण तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आध्यात्मिक साधना सब कुछ श्रमण संस्था का कार्य है, गृहस्थ तो मात्र उपासक है। उसके कर्तव्यों की इति श्री साधु, साध्वियों को दान देने अथवा उनके द्वारा निर्देशित संस्था को दान देने तक सीमित है। आज हमें इस बात का एहसास करना होगा कि जैन धर्म की संघ व्यवस्था में हमारा क्या और कितना गरिमामय स्थान है। चर्तुविध संघ के चार पायों में यदि एक भी पाया चरमराता या टूटता है तो दूसरे का अस्तित्व भी निरापद नहीं रह सकता है। यदि श्रावक अपने दायित्व और कर्तव्य को विस्मृत करता है तो संघ के अन्य घटकों का अस्तित्व भी निरापद नहीं रह सकता। चाहे यह बात कहने में कठोर हो लेकिन यह एक स्पष्ट सत्य है कि आज का हमारा श्रमण और श्रमणी वर्ग शिथिलाचार में आकण्ठ डूबता जा रहा है। यहाँ मैं किसी सम्प्रदाय विशेष की बात नहीं कर रहा हूँ और न मेरा यह आक्षेप उन पूज्य मुनिवृन्दों के प्रति है जो निष्ठापूर्वक अपने चारित्र का पालन करते हैं, यहाँ मेरा इशारा एक सामान्य स्थिति से है।

अन्य वर्गों की अपेक्षा जैन श्रमण संस्था एक आदर्श प्रतीत होती है, फिर भी यदि हम उसके अंतस्थल में झांककर देखते हैं तो कहीं न कहीं हमें हमारी आदर्श और निष्ठा को ठेस अवश्य लगती है। आज जिन्हें हम आदर्श और वन्दनीय मान रहे हैं उनके जीवन में छल-छद्म, दुराग्रह और अहम् के पोषण की प्रवृत्तियाँ तथा वासना-जीवन के प्रति ललक को देखकर मन पीड़ा से भर उठता है। किन्तु उनके इस पतन का उत्तरदायी कौन है, क्या वे स्वंय ही हैं? वास्तविकता यह है कि उनके इस पतन का उत्तदायित्व हमारे श्रावक वर्ग पर भी है, या तो हमनें उन्हें इस पतन के मार्ग की ओर अग्रसर किया है या कम से कम उनके सहयोगी बने हैं। साधु-साध्वियों में शिथिलाचार, संस्थाओं के निर्माण की प्रतिस्पर्धा और मठवासी प्रवृत्तियाँ आज जिस तेजी से बढ़ रही हैं, वह मध्यकालीन चैत्यवासी और भट्टारक परम्परा, जिसकी हम आलोचना करते नहीं अघाते, उनसे भी कहीं आगे है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि साधु-साध्वियों में जो शिथिलाचार बढ़ा है वह हमारे सहयोग से ही बढ़ा है। आज श्रावक, उनमें भी विशेष रूप से सम्पन्न श्रावक, धर्म के नाम पर होने वाले बाह्य आडम्बरों में अधिक रुचि ले रहा है। आध्यात्मिक साधना के स्थान पर वह प्रदर्शनप्रिय हो रहा है। धर्म प्रभावना का नाम लेकर आज के तथाकथित श्रावक और उनके तथाकथित गुरुजन दोनों ही अपने अहम् और स्वार्थों के पोषण में लगे हैं। आज धर्म की खोज अन्तरात्मा में नहीं, भीड़ में हो रही है। हम भीड़ में रहकर अकेले रहना नहीं जानते, अपितु कहीं अपने अस्तित्व और अस्मिता को भी भीड़ में ही विसर्जित कर रहे हैं। आज वही साधु और श्रावक अधिक प्रतिष्ठित होता है जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीड़ इकट्ठा कर सकता है, बात कठोर है किन्तु सत्य है। आज मजमा जमाने में जो जितना कुशल होता है वह उतना ही अधिक प्रतिष्ठित भी होता है।

आज सेवा की अपेक्षा सेवा का प्रदर्शन अधिक महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है। मैं पश्चिम के लायन्स और रोटरी क्लबों की बात नहीं करता, किन्तु आज के जैन समाज के विकसित होने वाले सोशल ग्रुप की बात करना चाहता हूँ। हम अपने हृदय पर हाथ रखकर पूछें की क्या वहाँ सेवा के स्थान पर सेवा का प्रदर्शन अधिक नहीं हो रहा है? मेरे इस आक्षेप का यह आशय नहीं है कि सोशल ग्रुप जैसी संस्थाओं का मैं आलोचक हूँ, वास्तविकता तो यह है कि यदि आज समाज, संस्कृति और धर्म को बचाएँ रखना है तो ऐसी संस्थाओं की नितान्त आवश्यकता है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि आज एक मंदिर, उपाश्रय या स्थानक कम बने और उसके स्थान पर गाँव-गाँव में जैनों के सोशल क्लब खड़े हों, किन्तु उनमें कहीं हमारे धर्म, दर्शन और संस्कृति का संरक्षण होना चाहिए। आचार की मर्यादाओं का पालन होना चाहिए। आज के युवा में जैन संस्कारों के बीजों का वपन हो और वे विकसित हों, इसलिए ऐसे सामाजिक संगठन आवश्यक हैं किन्तु यदि उनमें पश्चिम की अंधी नकल से हमारे सांस्कृतिक मूल्य और सांस्कृतिक विरासत समाप्त होते हैं, तो उनकी उपादेयता भी समाप्त हो जाएगी।

आज के युग में संचार के साधनों में वृद्धि हुई है और यह भी आवश्यक है कि हमें इन संचार के साधनों का उपयोग भी करना चाहिए, किन्तु इन संचार के साधनों के माध्यम से कहीं जीवन-मूल्यों और आदर्शों का प्रसारण होना चाहिए न कि वैयक्तिक अहम् का पोषण। आज हमारी रुचि उन आदर्शों और मूल्यों की स्थापना में उतनी नहीं होती, जितनी अपने अहम् के सम्पोषण के लिए अपना नाम व फोटो छपा हुआ देखने में होती है। इस युग में साधनाप्रिय साधु और श्रावक तो कहीं ओझल हो गए हैं। यदि उनका जीवन और चारित्रिक मूल्य आगे आए तो उनसे हमारे जीवन मूल्यों का संरक्षण होगा, अन्यथा केवल प्रदर्शन और अपने अहम् की पुष्टि में हमारी अस्मिता ही समाप्त हो जाएगी। आज न केवल नेताओं के बड़े-बड़े होर्डिंग्स लग रहे हैं, अपितु हमारे साधुओं के भी होर्डिंग्स लग गए हैं। संचार साधनों की सुविधाओं के इस युग में महत्त्व मूल्य और आदर्शों को दिया जाना चाहिए न कि व्यक्तियों को, क्योंकि उसके निमित्त से आज साधु समाज में एक प्रतिस्पर्धा की भावना भी जन्मी है और उसके परिणामस्वरूप संघ और समाज के धन का कितना अपव्यय हो रहा है यह किसी से छिपा नहीं है, यह धन भी साधुवर्ग के पास नहीं है, गृहस्थ वर्ग के पास से ही आता है। आज पूजा, प्रतिष्ठा, दीक्षा, चातुर्मास, आराधना और उपासना की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो पत्रिकाएँ छप रही हैं उनकी स्थिति यह है कि एक-एक पत्रिका की सम्पूर्ण लागत लाखों में होती है, क्या यह धन सत् साहित्य या प्राचीन ग्रंथों, जो भण्डारों में दीमकों के भक्ष्य बन रहे हैं, के प्रकाशन में उपयोगी नहीं बन सकता है ? मैं यह सब जो कह रहा हूँ उसका कारण साधक वर्ग के प्रति मेरे समादार भाव में कमी है ऐसा नहीं है, किन्तु उस यथार्थता को देखकर मन में जो पीड़ा और व्यथा है, यह उसी का प्रतिफल है। बाल्यकाल से लेकर जीवन की इस ढलती उम्र तक मैंने जो कुछ अनुभव किया है, मैं उसी की बात कह रहा हूँ। मेरे कहने का यह भी तात्पर्य नहीं है कि समाज पूरी तरह मूल्यविहीन हो गया है। आज भी कुछ मुनि एवं श्रावक हैं जिनकी चारित्रिक निष्ठा और साधना को देखकर उनके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव प्रकट होता है, किन्तु सामान्य स्थिति यही है। आज हमारे जीवन में और विशेष रूप से हमारे पूज्य मुनि वर्ग के जीवन में जो दोहरापन यथार्थ या विवशता बनता जा रहा है, उस सबके लिए हम ही अधिक उत्तरदायी हैं ।

आज हमें अपने आदर्श अतीत को देखना होगा, अपने पूर्वजों की चारित्र निष्ठा और मूल्य निष्ठा को समझना होगा। मात्र समझना ही नहीं, उसे जीना होगा, तभी हम अपनी अस्मिता की और अपने प्राचीन गौरव की रक्षा कर सकेंगे। आज पुनियां का आदर्श, आनन्द की चारित्र निष्ठा, भामाशाह का त्याग, तेजपाल और वस्तुपाल की धर्मप्रभावना सभी मात्र इतिहास की वस्तु बन गये हैं । तारण स्वामी, लोकाशाह, बनारसीदास आदि के धर्म क्रान्ति के शंखनाद की ध्वनि हमें सुनाई नहीं देती है यह हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण है, हम कब सजग और सावधान होंगे? यह चिन्तनीय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org